संस्कार

वीरेन्द्र गुप्तः



"भूषण"

पितृ चरणों में



भेंट कर्त्ता

श्रीमती राजेश्वरी देवी

संस्कार

लेखक

वीरेन्द्र गुप्तः

आवास—"वेद—कुटि"
राम बिहार कालोनी,
जिला सहकारी बैंक के पीछे,
मुरादाबाद

राष्ट्रीय सम्वत् ५९
सृष्टयाब्द १,९७,२९,४९,१०७
मानव सृष्टि वेद काल १,९६,०८,५३,१०७
दयानन्दाब्द १८३
विक्रम सम्वत् २०६३
सन् २००७ ई०

प्रकाशक :—

वेद संस्थान

मण्डी चौक, मुरादाबाद

प्राप्ति स्थान :—

वीरेन्द्र नाथ अश्विनी कुमार

प्रकाशन मन्दिर

मण्डी चौक, मुरादाबाद

आवास :—

वेद कुटि

राम बिहार कालोनी

जिला सहकारी बैंक के पीछे,

मुरादाबाद

द्वितीय संस्करण

दो हजार

मूल्य :— विषय की गम्भीरता का मनन करें।

कम्प्यूटर :— यूनिक प्रिन्टर्स

सम्पर्क :— चलितवार्ता ९८९७५२८९५०

वेद संस्थान

की साहित्य सेवा

वेद संस्थान की स्थापना चैत्र शुक्ल प्रतिपदा सम्वत् २०४८ रविवार १७ मार्च १९९१ को हुई।

वेद संस्थान का लक्ष्य है—सद्साहित्य, साधन के अनुसार निःशुल्क, अल्पमूल्य अथवा लागत मूल्य पर आपके पास तक पहुँचाता रहे। हमने अब तक १—विनयामृत सिन्धु, २— अभिनन्दनीय व्यक्तित्व, ३— विवेकशील बच्चे, ४— जन्म दिवस, ५— योग परिणति, ६— करवा चौथ, ७— दैनिक पंच महायज्ञ, ८— गोधन, ९— पर्वमाला, १०— दाम्पत्य दिवस, ११— छलकपट और वास्तविकता, १२— ईश महिमा, १३— मन की अपार शक्ति १४— रत्न माला १५— नयन भास्कर १६— युधिष्ठिर यज्ञ गीता, १७— यज्ञों का महत्व १८— वेद उद्गीत, १९— दर्पण २०— राष्ट्रीय गौरव नामक पुस्तकें प्रकाशित की हैं। इसी श्रंखला में श्री वीरेन्द्र गुप्तः द्वारा रचित कृति २१ वीं पुस्तक "संस्कार" प्रस्तुत है। यह प्रस्तुति वेद संस्थान की और सहयोग दानी महानुभावों का है। इस सहयोग और उदार भाव के लिये वेद संस्थान उनका आभारी है।

हमें आशा है कि आप वेद संस्थान को पूर्ण सहयोग देकर नूतन साहित्य प्रकाशित करने का अवसर अवश्य प्रदान करते रहेंगे।

विजय कुमार	**वेद संस्थान**	**अम्बरीष कुमार**
प्रकाशन सचिव	मण्डी चौक, मुरादाबाद	सचिव

लेखक परिचय



नाम — श्री वीरेन्द्र गुप्तः
जन्म — श्रावण शुक्ल ६, संवत् १९८४,
बुद्धवार ३ अगस्त, १९२७ ई०, मुरादाबाद
गृहस्वामिनी — श्रीमती राजेश्वरी देवी
सम्प्रति — व्यवसाय

सम्मान :

१— १४ सितम्बर १९८२ राष्ट्रभाषा हिन्दी प्रसार समिति।
२— ३ अक्टूबर १९८२ आर्यसमाज मण्डी बाँस, मुरादाबाद।
३— १४ सितम्बर १९८८ श्री यशपाल सिंह स्मृति साहित्य शोधपीठ, मुरादाबाद।
४— ३० सितम्बर १९८८ अहिवरण सम्मान पुरालेखन केन्द्र, मुरादाबाद।
५— २ जनवरी १९९२ साहू शिवशक्ति शरण कोठीवाल स्मारक समिति, मुरादाबाद। द्वारा साहित्य सम्मान
६— ७ जनवरी १९९६ अभिनन्दन समिति द्वारा नागरिक अभिनन्दन एवं अभिनन्दन ग्रन्थ तथा सामूहिक अभिनन्दन पत्र।
७— ६ मार्च १९९९ अखिल भारतीय माथुर वैश्य महासभा द्वारा राष्ट्रीय अधिवेशन ग्वालियर में (साहित्य) समाज शिरोमणी सम्मान।
८— ९ मई १९९९ विराट आर्य सम्मेलन पश्चिमी उत्तर प्रदेश मेरठ (आर्य शिरोमणी) सम्मान।
९— २६ जनवरी २००० माथुर वैश्य मण्डल, मुरादाबाद द्वारा (साहित्यक शताब्दी पुरुष) सम्मान।
१०— २५ फरवरी २००० (अमृत महोत्सव) के अवसर पर संस्कार भारती, मुरादाबाद द्वारा अभिनन्दन।
११— १५ सितम्बर २००० (राष्ट्रीय हिन्दी सेवा सहस्त्राब्दी सम्मान) सहस्त्राब्दी विश्व हिन्दी सम्मेलन नई देहली के द्वारा। सँयुक्त राष्ट्र संघ (यूनैस्को) आदि से सम्बद्ध।
१२— १७ सितम्बर २००० ''ज्ञान मन्दिर पुस्तकालय, रामपुर'' हिन्दी दिवस पर सम्मान।
१३— १४ सितम्बर २००३ हिन्दी साहित्य सदन द्वारा 'हिन्दी साहित्य सम्मान'।

उल्लेख :

१— हिन्दी साहित्य का इतिहास ले० डा० आलोक रस्तौगी एवं श्री शरण, देहली १९८८।

२— "आर्य समाज के प्रखरव्यक्तित्व" दिव्य पब्लिकेशन केसरगंज अजमेर १९८९।

३— "आर्य लेखक कोष" दयानन्द अध्ययन संस्थान जयपुर १९९१।

४— एशिया—पैसिफिक "हू इज़ हू" (खण्ड ३) देहली २०००।

५— गंगा ज्ञान सागर भाग ४ पृष्ठ २३ सन् २००२।

प्रकाशित कृतियाँ :

१— इच्छानुसार सन्तान, २— लौकिट (उपन्यास), ३— पुत्र प्राप्ति का साधन, ४— पाणिग्रहण संस्कार विधि, ५— How to be get a son,(अनुवादित) ६— सीमित परिवार, ७— बोध रात्रि, ८— धार्मिक चर्चा, ९— कर्म चर्चा, १०— सस्ती पूजा, ११— वेद में क्या है? १२— गर्भावस्था की उपासना, १३— वेद की चार शक्तियाँ, १४— कामनाओं की पूर्ति कैसे, १५— नींव के पत्थर, १६— यज्ञों का महत्व, १७— ज्ञान दीप, १८— The light of learning (अनुवादित) १९— दैनिक पंच महायज्ञ, २०— दिव्य दर्शन, २१— दस नियम, २२— पतन क्यों होता है, २३— विवेक कब जागता है, २४— ज्ञान कर्म उपासना, २५— वेद दर्शन, २६— वेदांग परिचय, २७— संस्कार, २८— निरकार साकार के स्वरूप का दिग्दर्शन, २९— मनुर्भव, ३०— अदीनास्याम, ३१— गायत्री साधन, ३२— नव सम्वत्, ३३— आनुषक (कहानियाँ), ३४— विवेकशील बच्चे, ३५— जन्म दिवस, ३६— करवा चौथ, ३७— योग परिणति, ३८— पर्वमाला, ३९— दाम्पत्यदिवस, ४०— छलकपट और वास्तविकता, ४१— श्रद्धा सुमन, ४२— माथुर वैश्यों का उद्गम, ४३— ईश महिमा, ४४— मन की अपार शक्ति, ४५— नयन भास्कर, ४६— युधिष्ठिर यक्ष गीता, ४७— वेद उद्गीत, ४८— दर्पण, ४९—राष्ट्रीय गौरव।

वेद ईश्वरीय ज्ञान है।

वेद सबके लिये उपकारी है।

वेद सबको पढ़ना चाहिये।

।।ओ३म्।।

आरे स्याम दुरिताद् अभीके।

ऋग्वेद ३।३९/७

हम पापाचार से दूर रहें।।

परिब्राजकाचार्य श्रीमद्दयानन्द सरस्वती महाराज का मन्तव्य था कि व्यक्ति से समाज का निर्माण होता है, समाज से व्यक्ति का नहीं। इसीलिये व्यक्ति निर्माण पर विशेष बल दिया और व्यक्ति निर्माण के लिये संस्कार विधि की रचना की। जिस प्रकार भवन की नींव मजबूत होने पर वह भवन सहस्त्रों प्राकृतिक प्रकोपों और भयंकर भूकम्पों के आक्रमणों को भी सहन कर स्थिर खड़ा रहता है, उसे कोई विचलित नहीं कर पाता। उसी प्रकार मानव निर्माण की बात पर विचारते हुए महर्षि ने भवन की नीव को लक्षित कर मानव भवन के निर्माण हेतु नींव रूप में गर्भाधान संस्कार को संस्कार विधि में सर्वप्रथम स्थान दिया और उसी संस्कार के द्वारा मानव—निर्माण के स्वप्न को साकार रूप में देखना चाहते थे। परन्तु हमने ऋषिवर की इस अमूल्य देन का कोई भी मूल्यांकन नहीं किया जिसका परिणाम हमारे सामने उपस्थित है। जो भी पथ—प्रदर्शक, महापुरुष, विद्वान् पण्डित हमारे मध्य से चला गया, उसकी पूर्ति आज तक न हो सकी। मानव निर्माण के पारखी एवं पथिक महर्षि दयानन्द ने गर्भाधान संस्कार को जितना महत्वपूर्ण माना था, हमने उतना ही महत्वहीन मान कर छोड़ दिया।

मानव को छोड़कर शेष समस्त प्राणियों को जन्म—जात प्रकृति प्राप्त होती है। उनको जन्म के साथ ही जाति, आयु और भोग प्राप्त हो जाते हैं। जिस प्रकार की योनि में जन्म लिया है वह उस ईश्वर प्रदत्त प्रकृति से भिन्न कोई भी कार्य नहीं करते। एक विशेष बात यह है कि एक जाति के जीव—जन्तु संसार भर के भिन्न-‌-भिन्न भागों में जन्म लेने के पश्चात् भी, देशकाल के प्रभाव से उनमें कोई परिवर्तन नहीं होता उनकी वाणी, रहन—सहन और खान—पान सभी कुछ एक समान होता है।

परमपिता परमात्मा ने समस्त जीवों को शरीरानुसार प्रकृतियाँ प्रदान की हैं। उनको जन्मते ही अपनी—अपनी प्रकृति का स्वयमेव ही भान होने लगता है, उन्हें कोई सिखाता नहीं, वह अपनी—अपनी प्रकृति के अनुसार सुखपूर्वक जीवनयापन करते हैं। उन्हें किसी से होड़ नहीं, किसी से प्रतिद्वन्द्विता नहीं, धनादि के संग्रह की वृत्ति नहीं, उन्हें अपने पुरुषार्थ और प्रभु पर पूरा भरोसा है वह पूरे जीवन क्रियाशील होकर जीते हैं। इसके विपरीत सृष्टि के रचयिता ने सृष्टि की सर्वश्रेष्ठ कृति मानव कृति को कोई भी प्रकृति प्रदान नहीं की, उसकी वाणी भिन्न—भिन्न प्रकार की है, रहन—सहन, खान—पान सभी कुछ भिन्न—भिन्न प्रकार का है। ऐसा क्यों? क्या यह प्रभु का मानव के प्रति अन्याय नहीं? नहीं! ऐसा नहीं। इस रहस्य को महामुनि चाणक्य ने भली प्रकार समझा है।

आहार निद्रा भय मैथुनानि, समानि चैतानि नृणांपशूनाम्।
ज्ञानन्नराणामधिको विशेषो, ज्ञानेन हीना: पशुभि: समाना।।

चाणक्य नीति १७।१७

भोजन, निद्रा, भय और मैथुन मनुष्य और पशु में समान ही हैं। मनुष्य में केवल ज्ञान ही विशेष अधिक है। ज्ञान से रहित मनुष्य पशु के समान है।

प्रभु ने जैसी अमूल्य मानव कृति की रचना की है वैसी ही अमूल्य निधि रूप में ऋतम्भरा बुद्धि भी प्रदान की है और सृष्टि के आदि

में ज्ञान का भण्डार चारो वेद भी मानव को ही प्रदान किये, अन्य जीव–जन्तुओं के लिये नहीं। कर्म करने की स्वाधीनता भी बहुत बड़ी निधि है जो नैसर्गिक रूप से मिली हुई है, मानव कर्म करने में पूर्ण रूपेण स्वतन्त्र है। मानव में एक और विशेष गुण विद्यमान है, वह संगति के प्रभाव को शीघ्र ही ग्रहण कर लेता है।

आपने सुना है कि एक मानव बच्चा भेड़ियों के झुण्ड में पल कर भेड़ियों जैसी प्रकृति का हो गया, उसमें मानव जैसे कोई भी गुण नहीं रहे थे, इसके विपरीत एक सिंह का बच्चा भी भेड़ियों के झुण्ड में पलने लगा, जब वह बड़ा हुआ तो उसे अपनी प्रकृति का भान होने लगा और वह भेड़ियों पर ही झपट्टा मारने लगा, उसने अपनी प्रकृति को नहीं त्यागा।

मानव कृति शुद्ध चैतन्य कृति है वह किसी भी प्रकार की प्रकृति को लेकर नहीं आया। उस शुद्ध चैतन्य कृति को वास्तविक स्वरूप में स्थिर रखने के लिये ही हमारे मनीषियों ने संस्कारों का निर्माण किया था। इन संस्कारों की उपादेयता को संस्कार विधि के रूप में प्रस्तुत कर गुरुदेव दयानन्द ने संसार के ऊपर एक बहुत बड़ा उपकार किया है।

हम यज्ञोपवीत धारण करते हैं, जो तीन प्रकार के उत्तरदायित्वों का हर समय स्मरण कराते रहते हैं। देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋण तथा धर्म के प्रति, अपने प्रति और परिवार के प्रति जागरूक रहना, इस प्रकार अपने उत्तरदायित्व और संस्कारों के महत्व को समझकर संस्कारित और सुयोग्य संतान का निर्माण करें। कुसंस्कारित सन्तानों के कुप्रभावों को आगे अंकित करते हैं जो कलंकों को देने वाली होती है। उनका निराकरण करने पर कलंकित सन्तानों के महा दुःख से बच सकते हैं।

अजात मृत मूर्खेभ्यो वरमाद्यौ न चान्तिमः।
सकृद्दुःख करावाद्यावन्तिमस्तु पदे पदे।।

मनु

जिसने जन्म ही नहीं लिया वा जो जन्म लेकर मर गया और मूर्ख, इन तीनों में आदि के दो ही भले हैं, क्योंकि वह केवल एक बार ही दु:ख के कारण हैं, और अंतिम (मूर्ख) तो पद–पग पग दु:ख देता है, अत: प्रभु मूर्ख अविवेकी संतान से दूर ही रखे।

कलंक से कैसे बचें

मानव दुर्बुद्धि, दुर्व्यसन,अखाद्य, और कुसंस्कारों के कारण अनेक प्रकार के कलंक अपने साथ जोड़ लेता है। कुछ कलंक तो ऐसे होते हैं जिन्हें जनसाधारण अज्ञानता वश समझ कर ओझल कर देता है, कुछ को अभाव वश कह कर ओझल कर देता है और कुछ को धनी का मनोरंजन कह कर ओझल कर देता है। कुछ ऐसे भी कलंक हैं जिन्हें कोई ओझल नहीं करता और स्वयं भी ओझल नहीं कर पाता। वैसे तो सभी प्रकार के कलंको से बचना चाहिये, परन्तु न ओझल होने वाले कलंकों से बचने का उपाय अवश्य ही करना चाहिये। प्रश्न उठता है कि न ओझल होने वाले कौन से कलंक हैं?

यदा–कदा महिलाओं में दो प्रकार के दोष पाये जाते हैं जो आगे चलकर कलंक रूप बन जाते हैं, एक बन्ध्या दोष और दूसरा पर पुरुष गमनं की कामना का होना। यही दोनों दोष न ओझल होने वाले कलंक रूप बने रहते हैं। हमारे मनीषियों ने इन दोनों कलंक रूप दोषों पर अति गम्भीरता से मनन कर निवारण हेतु सर्व सुलभ सार्थक साधन उपस्थित कर जनमानस का कल्याण किया, परन्तु प्रमादवश हमने उनके निर्दिष्ट साधन को भुलाकर अपना ही नहीं वरन् अपने राष्ट्र का बहुत बड़ा अहित ही किया।

वेदकाल से लेकर महाभारत काल तक नारी जाति का सम्पूर्ण सम्मान होता रहा और उसको वेद पढ़ने का पूर्ण रूपेण अधिकार प्राप्त था। वह वेदाध्ययन कर अपने कर्तव्य का पालन कर उत्तमोत्तम

सन्तति के निर्माण में सदैव तत्पर रहती थी। वह अपने अधिकार को माँगती नहीं थी, परन्तु अपनी सन्तति को उच्चतम आसन पर आसीन करा कर उसे स्वत: गौरवान्वित अधिकार प्राप्त हो जाता था। काल क्रमेण नारी जाति का पतन अत्यन्त अधोगति तक पहुँच गया, नारी को बुद्धिहीन, गवाँर और पशु के समान समझा जाने लगा। इसी कारण जो नारी 'नर की खान' थी और जिसने सहस्त्रों विद्वान, शूरवीर, योद्धा, महात्मा और ऋषि—मुनियों को जन्म दिया था, वह आज किंकर्त्तव्य विमूढ़ होकर अपने उत्तरदायित्व को भूला बैठी है। वह अपने अस्तित्व को ही भूल चुकी है, इस कारण सन्तति बिगड़ती ही चली जा रही है।

बात स्पष्ट है कि जब नारी सच्चरित्र, सदाचरण और सद्व्यवहार से विभूषित विदुषि हो तभी सन्तान भी उसी अनुरूप होती हैं। इस प्रकार नारी देश, जाति और धर्म के वास्तविक स्वरूप को स्थिर बनाये रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती रही और आज भी निभाने में सक्षम है। कहते हैं श्री कृष्ण को जन्म देने के लिये वसुदेव देवकी का होना अनिवार्य है। इसका अर्थ है, न वसुदेव देवकी जैसे माता पिता होंगे और न श्रीकृष्ण जैसी दिव्य विभूति जन्म ले सकेगी। यह बात सत्य नहीं, हमारे मनीषियों ने वेद विज्ञान का मन्थन कर हमें वह वैज्ञानिक साधन प्रदान किया है कि हम वसुदेव देवकी के अभाव में भी थोड़ी सी सावधानी से १६ कला युक्त श्रीकृष्ण और १२ कला युक्त श्री राम जैसी दिव्य सन्तानों को प्राप्त कर सकते हैं। इसी विज्ञान में यह भी बताया गया, असावध ानी हो जाने पर बन्ध्या और दुश्चरित्र कन्याएँ और अल्पायु दरिद्री पुत्र भी जन्म ले लेते हैं।

मेरा इस पुस्तिका के लिखने का यही उद्देश्य है कि आप यह जान लें कि हम अपनी सन्तानों को कैसे सुधार सकते हैं। वैसे तो हमने इस विषय को विस्तार से "इच्छानुसार सन्तान" पुस्तक में लिखा है। इस समय केवल बन्ध्या और दुश्चरित्रता के दोषों से कैसे बचा जा सकता है, जो आगे चलकर कलंक रूप बन जाते हैं।

जिस दिन से स्त्री का मासिक धर्म प्रारम्भ होता है, वही प्रथम दिन कहलाता है और उसी दिन की रात्रि को प्रथम रात्रि कहते हैं उस दिन से १६ दिन अर्थात् १६ वीं रात्रि तक ही गर्भ स्थापित होता है। हमने प्रत्येक रात्रि के गर्भ स्थापित होने के प्रभाव की "इच्छानुसार सन्तान" पुस्तक में सविस्तार चर्चा की है। यहाँ पर हम केवल ७, ११, १३ इन तीन रात्रियों के दोष युक्त प्रभाव एवं अन्य दो कारणों का दिग्दर्शन कराते हैं।

(१) सातवीं रात्रि में स्थापित गर्भ से कन्या का जन्म होगा, परन्तु वह बन्ध्या अर्थात् आगे को सन्तान को जन्म न देने के दोष से युक्त होती है।

(२) ग्यारहवीं रात्रि में स्थापित गर्भ से कन्या का जन्म होगा, परन्तु वह दुश्चरित्र दोष से युक्त होती है।

(३) तेरहवीं रात्रि में स्थापित गर्भ से कन्या का जन्म होगा, परन्तु वह वर्णसंकर सन्तान को उत्पन्न करने वाले दोष से युक्त होती है।

वर्तमान समय में अखाद्य और तामस पूर्ण भोजन का भक्षण और रसिक वातावरण के कारण संयम का जीवन नहीं बिता सकते और उत्तम सन्तति के जन्म देने में बिल्कुल ही अनभिज्ञ और असमर्थ हैं तो कम से कम इतना तो अवश्य ही कर सकते हैं कि दोषयुक्त और कलंकों को देने वाली सन्तानों को तो जन्म न दें अर्थात् सातवीं, ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रियों में भूलकर भी गर्भ स्थापित न करें।

(४) एक और दोषयुक्त रात्रि की चर्चा आपके सन्मुख प्रस्तुत करते हैं। चौथी रात्रि में स्थापित गर्भ से पुत्र का जन्म होगा। परन्तु वह अल्पायु और दरिद्रता के दोषों से युक्त होता है।

(५) अब स्थान के दोष पर प्रकाश डालते हैं—परदेश में और दूसरे के गृह पर गर्भाधान नहीं करना चाहिए। इससे सन्तान अल्पायु दुराचारी और निर्लज्ज होती है।

एक महिला उसके तीन बच्चे जिसमें से एक का विवाह भी कर दिया, दुर्भाग्यवश पति की छत्रछाया विलीन हो गई। बच्चों और अपने पोषण के लिए चाकरी की। पथ से पैर फिसलने लगा वंश की लाज को त्याग कर परदे की ओट में पर का साथ लिया। यह दोष तेरहवीं रात्रि में स्थापित गर्भ का है।

विवाह से पूर्व ही एक युवक को मित्र बना लिया। माता—पिता ने अन्य युवक के साथ विवाह कर दिया, कुछ समय पश्चात् पति को त्याग कर मित्र के घर चली गई और माता—पिता के समझाने पर भी न मानी। विवाह से पूर्व ही सहवास की इच्छा का होना यह दोष ग्यारहवीं रात्रि में स्थापित गर्भ के हैं।

सन्तान का न होना सबके लिए दु:खदायी हो जाता है। यह दोष सातवीं रात्रि में स्थापित गर्भ का है।

निर्बल, कुबुद्धि, अल्पायु और दरिद्री पुत्र का होना भी अत्यन्त दु:खदायी हो जाता है। यह दोष चौथी रात्रि में स्थापित गर्भ का है।

मेरे अपने विचार से संसार का कोई भी व्यक्ति ऐसा न होगा जो उपरोक्त दोषों से युक्त बहिन, कन्या और पत्नी अथवा भाई, पुत्र और पति आदि को देखकर वेदना युक्त चिन्ता के दु:ख से दुखित न हो उठे, वास्तव में यह सभी दोष हृदय में अति पीड़ा को उत्पन्न करने वाले कलंक ही हैं।

दोषों से युक्त रात्रियों में स्थापित गर्भ से उत्पन्न बच्चों के दोषों को संसार की बड़ी से बड़ी कोई भी युक्ति अथवा शक्ति किसी भी प्रकार से उसका निराकरण नहीं कर सकती। इसका निराकरण केवल यही है कि हम इन दोष युक्त रात्रियों में गर्भ की स्थापना न करें।

जब गृहस्थ जन उक्त चारो रात्रियों का त्याग करके उत्तम सन्तति को जन्म देने की दिशा में आगे पग बढ़ायेंगे, तब वह दिन

दूर नहीं जब वह अपने परिवार और वंश में कलंक रहित सुख, शान्ति और समृद्धि को प्राप्त कर महान गौरव का अनुभव करेंगे।

हमारे गृहस्थजन जब तक दोष रहित पवित्र रात्रियों में गर्भ स्थापित कर उत्तम सन्तति को जन्म देते रहे, उस समय तक भारतवर्ष मनु जी महाराज की गर्वोक्ति को चरितार्थ करता रहा।

एतद्देश प्रसूतस्य सकाशादग्र जन्मन:।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्व मानव:।।

इस देश अर्थात् भारत भूमि पर उत्पन्न हुए विद्वान् मनीषियों से पृथ्वी के समस्त मानव अपना—अपना चरित्र सीखें।

इतिहास हमारा साक्षी है कि जब—जब कामी कुत्ते के समान दरिन्दों ने नारी के शील भंग करने की सोची, तब—तब पूर्ण आत्म विश्वास के साथ रणचण्डी का रूप धारण कर अपने अस्तित्व और संस्कृति की रक्षा में अपने प्राणों तक का उत्सर्ग कर दिया।

गृह के द्वार पर सुधीर सिंह खड़ा राजा भोज के आने की प्रतीक्षा कर रहा है। कुछ ही क्षणों के पश्चात् राजा की सवारी आई और गृह में प्रवेश कर अन्दर पहुँचे। सुधीर सिंह ने कहा था कि राजा पिता समान ही होता है उस नाते से उसकी पत्नी ने आहट सुनकर पिता का स्वागत करने के लिये पाकशाला से निकल आई और राजा को अभिवादन कर एक सुन्दर आसन पर बैठाया। सुधीर सिंह रक्षा की दृष्टि से गृह—द्वार पर ही खड़ा रहा। स्त्री एक सुन्दर थाल में भोजन लगाकर लाई और राजा के सामने रख कर चली गई।

राजा भोज की दृष्टि निरीक्षण के रूप में स्त्री की चाल—ढाल पर लगी थी। राजा ने थाल में से ग्रास तोड़ कर शाक में डाला तो वह हाथ शाक में न जाकर भूमि पर पड़ा क्योंकि राजा की दृष्टि स्त्री की ओर टकटकी लगाये हुए थी। जब स्त्री ने देखा कि यह कैसा पिता राजा भोज है जो मेरी ओर टकटकी लगाये देख रहा है। यह मुझे देखने में इतना आतुर है कि उसका हाथ शाक में न जाकर भूमि पर पड़ रहा

है। कुछ दाल में काला अवश्य है। इतना विचार कर स्त्री अन्दर पहुँची और एक कच्चा आम लेकर राजा के सामने आकर उखरू बैठ दोनों हाथों को घुटनों के बीच करके जोरों के साथ किलकिला कर क्रोध से दबाती हुई बोली—

रे रे रसाल फल मुञ्चति किम् रसन्नो।
नाहम परेण पुरुषेण रतिम् कदाचित्।।
न अस्मात पतिस्तु परदार रत: कदाचित।
जानति नृपति भोज पर दार कन्या।।

अरे ओ रसाल (आम) के फल मैं तुझे दबाती हूँ। तू रस क्यों नहीं छोड़ता। मैंने तो कभी पर—पुरुष से रति क्रिया भी नहीं की। तू रस क्यों नहीं छोड़ता और मेरे पति ने भी पर—स्त्री के साथ रति क्रिया नहीं की और राजा भोज जो दूसरों की स्त्री को अपनी कन्या समझता है तो फिर तू रस क्यों नहीं छोड़ता।

नृपति भोज स्त्री के वचन सुनकर चौंक उठे और प्रसन्न होकर कहने लगे— "देवी! मेरे मन में कुछ भ्रान्ति उत्पन्न होगई थी, मैं तेरी परीक्षा लेने आया था। तू उसमें उत्तीर्ण हुई। मैं तेरा अभिनन्दन करता हूँ।" कहते हुए नृपति भोज ने स्त्री के चरणों की ओर अपना हाथ चरण स्पर्श संकेत के लिए बढ़ाया और फिर कहा "देवे! तुम मेरे राज्य की अमूल्य निधि हो। मैं स्वाभिमान के साथ कह सकता हूँ कि मेरे राज्य में पाप को कहीं स्थान नहीं।"

बड़े भाई की पत्नी से छोटा भाई कहता है, क्या तुम अपने पति से सन्तुष्ट हो? उस देवी ने सन्तान का अभाव होते हुए भी कोई उत्तर नहीं दिया। नारी की यह गौरवता, दोष रहित पवित्र रात्रियों में स्थापित गर्भ की होती है।

बादशाह अकबर ने आगरे में गुलाबी मेले के नाम से एक योजना बनई जिसके अन्तर्गत अपनी दूतियों के द्वारा सुन्दर महिला को जाल में फँसाकर शील हरण करने का घृणित कुकृत्य करता था। दरबारी नव—रत्नों में गिने जाने वाले पृथ्वीराज की पत्नी किरणमयी को यह अत्याचार

सहन न हुआ, वह भी सजधज कर मेले में गयी। अकबर के संकेत पर दूतियाँ किरणमयी को घुमा—फिराकर शीलहरण कक्ष में ले गयीं, वासनाओं से उत्तेजित अकबर सामने आकर हाथ बढ़ाने लगा, उसी क्षण वीरांगना किरणमयी ने उछल कर अकबर के एक लात मारी, कामी अकबर एकदम धम से भूमि पर गिर पड़ा, तत्काल उस देवी ने छाती पर पैर रखकर कमर से कटार निकाल कर सीने पर रख दी, अकबर घबरा उठा, हाथ जोड़कर माफी माँगने लगा। भारतीय संस्कृति की रक्षा करने वाली वीरांगना ने उसे उस समय क्षमा किया जब उसने माँ कहकर क्षमा मांगी, और वचन लिया कि गुलबी मेला भविष्य में कभी नहीं लगेगा।

सिन्ध के बादशाह अहमदशाह ने रजत सरोवर के किनारे एक शीत महल बनवाया था। गर्मी के दिनों में वह उसी में रहा करता था। एक दिन नौका—विहार के समय एक हिन्दू कवि के द्वारा एक राजपूत कुमारी के सौन्दर्य की प्रशंसा का गीत सुनां। सुनकर प्रश्न किया यह कौन सुन्दरी है? कवि ने कहा—यह राजपूत पर्वत सिंह की कन्या लाली है। बादशाह ने पर्वत—सिंह के पास लाली का विवाह अपने साथ करने का प्रस्ताव भेजा। पर्वत सिंह ने कूटनीतिक दृष्टि से प्रस्ताव स्वीकार करने का उत्तर दे दिया। पर्वतसिंह अहोर के पहाड़ी किले में चले गए और युद्ध की तैयारी करने लगे।

यह समाचार बादशाह तक पहुँच गया। अहमदशाह दस हजार सेंना लेकर चलने लगा और निश्चय किया कि यह सेना बारात के रूप में दुल्हन को लेकर लौटेगी, नहीं तो राजपूतों का सर्वनाश कर दूँगा। अहोर के किले में हाथी पर सवार अहमदशाह ज्यों ही प्रवेश करने लगा, त्यों ही एक बाँण किले में से आकर ताज में लगा, उसमें एक पत्र बँधा था उसमें लिखा था "जिस कुशल धर्नुधर ने इस बाँण को तुम्हारे ताज तक पहुँचाया है वह कुत्सित मस्तक को भी छेद सकता है, जिसमें लाली को लेने की लालसा उत्पन्न हुई है।

दुल्हन के लिए भेजी गई पोषाक के चिथड़े हाथी के सामने आकर गिरे अर्थात् भयंकर युद्ध की घोषणा हो गई। बादशाह ने घेरा डाल दिया, किले में शनैः—शनैः खाद्य सामग्री समाप्त होने लगी, अपने अस्तित्व और संस्कृति की रक्षा का एक ही उपाय दीख रहा था, एक स्त्रियों का जौहर दूसरे राजपूतों का रणचण्डी का आलिंगन।

एक विशाल चिता बनाकर उसमें अग्नि प्रज्वलित की गई, एक—एक करके सभी राजपूत वीरांगनायें अग्नि कुण्ड में कूदने लगीं और किले में एक भी स्त्री शेष न बची। स्त्रियों की ओर से निश्चिन्त होकर तीन हजार राजपूत बलिदानी केसरिया बाना पहन कर किले के बाहर निकले और अहमदशाह की सेना पर केहरी के समान झपट पड़े। भयंकर युद्ध छिड़ गया। अहमदशाह की सेना के पैर उखड़ गये, उसने सेना का फिर से उत्साह बढ़ाकर एक जोरदार आक्रमण किया, राजपूतों की भी संख्या कम होने लगी, तीन हजार राजपूत १० हजार शत्रु सेना से लड़ते—लड़ते खेत हो गये।

निर्दयी बादशाह ने बड़ी उत्सुकता के साथ अहोर किले में प्रवेश किया, निर्जन श्मशान देखकर स्तब्ध रह गया। राजपूती जौहर व्रत प्रत्यक्ष रूप से सामने था। इससे उसे बड़ी निराशा हुई, उसका पाषाण हृदय भी इस नारी—हत्या से द्रवित हो गया और सोचने लगा कि मैंने यह कार्य अच्छा नहीं किया।

कुछ ही दिनों पश्चात् निराशा आशा में परिणत हो गई, एक सन्देश मिला "लाली अभी जीवित है। उसे पर्वतसिंह ने पड़ौसी जमीदार राजपूत के यहाँ भेज दिया था, लाली स्वयं बादशाह पर मुग्ध है और विवाह करने को तैयार है।" अहमदशाह के आनन्द की सीमा न रही। विवाह की बड़े उत्साह से सजावट आदि की तैयारियाँ होने लगीं।

लाली की ओर से प्राप्त पोशाक पहने अहमदशाह और लाली विवाह मण्डप पर बैठे हैं। विवाह हिन्दू रीति से हो रहा है।

मुसलमान उसके इस कार्य पर घृणा की वर्षा कर रहे थे। राजपूत भी कोई कौतुक युक्त है, कोई विषादमय है, कोई घृणायुक्त दृष्टि से देख रहा है।

विवाह विधि के मध्य में ही लाली उठी और पति का हाथ पकड़ कर ऊपर सरोवर के किनारे छज्जे पर ले गई। आइए, धूप में खड़े होकर हम लोग अपनी प्रजा को दर्शन देवें। बादशाह ने दुल्हन की आज्ञा का पालन किया। उसने देखा चारो ओर दूर–दूर तक जमा लोग टकटकी लगाये हमारी ओर देख रहे हैं। जिस लाली के लिए मैंने हजारों मनुष्यों का रक्त बहाया था वह अब मेरी बगल में खड़ी है। मेरे जीवन में इससे और अधिक क्या आनन्द हो सकता है। लाली की ओर निहारने लगा, लाली ने व्यंग पूर्वक कहा, ''मालिक मेरे! इस उपस्थित आनन्द को भोग लीजिये, नहीं तो यह घड़ी जाती रहेगी। सांसारिक सुखों की सर्वोच्च सीमा पर पहुँचना ही मानो ईश्वरीय दण्ड का पात्र होना होता है। हम लोग जो इस समय सब तरह से सुखी और स्वस्थ हैं, आश्चर्य नहीं घड़ी भर में इस संसार से उठ जायें।'' कामांध अहमदशाह कुछ नहीं समझ पाया और मुस्कराता रहा। उनकी रत्न जड़ित पोशाक पर सूर्य की किरणें एक अपूर्व शोभा दे रही थीं। तेज धूप के कारण ज्यों ही उसके शरीर से पसीना निकला त्यों ही वस्त्रों में लगे तीव्र विष ने अपना कार्य प्रारम्भ कर दिया। वह विकल होकर इधर–उधर दौड़ने लगा, पोशाक को फाड़–फाड़ कर फेंकने लगा। वह चिल्लाना चाहता है परन्तु कण्ठ से आवाज हीं नहीं निकलती। अन्त में उसका शरीर शिथिल होकर गिर पड़ा। जब तक लोगों ने उसकी इस दशा का कारण मालूम किया तब तक वह संसार से विदा हो गया था।

लाली ने अहमदशाह के शव को एक बार घृणा की दृष्टि से देखा और महल के सबसे ऊँचे शिखर पर चढ़ कर उसने अपने पिता के प्यारे अहोर किले की ओर देखा, उसके मुख–मण्डल पर

एक विकट हँसी की रेखा दौड़ पड़ी और कहा—जिसने मेरे माता—पिता, भाई, बन्धुओं का वध किया, आज वह भी संसार से चल बसा और उसने वहीं से सरोवर में कूदकर स्वाभिमानी राजपूत पर्वत सिंह के टिमटिमाते हुए अन्तिम दीपक को सदैव के लिये बुझा दिया। उस राजपूत वीरांगना ने अपने गौरव, अस्तित्व, धर्म और संस्कृति की अपना बलिदान देकर पूर्ण रक्षा की। इसी प्रकार की सहस्त्रों घटनाओं से इतिहास भरा पड़ा है।

१५ वीं रात्रि में स्थापित गर्भ से कन्या का जन्म होता है, जो उक्त प्रकार की दिव्यता से विभूषित होती है। संसार का बड़े से बड़ा प्रलोभन अथवा बड़ी से बड़ी शक्ति उसे अपने पथ से विचलित नहीं कर सकती।

आदर्श नारी निश्चल स्वभाव से युक्त है तो उसे संसार का सबल से सबल उद्‌ण्डी अथवा कुटिल पुरुष अपने पथ से शक्ति अथवा युक्ति द्वारा कभी भी विचलित नहीं कर सकता अर्थात् वह अपनी स्वार्थ सिद्धि को प्राप्त करने में कभी सफल नहीं हो सकता। नारी के अबला और लचीलेपन का ही स्वार्थी लोग लाभ उठाकर उसे पथ भ्रष्ट कर देते हैं।

ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमुपाघ्नत।

ब्रह्मचर्य और तप से देवता अमर हुए हैं और मोक्ष प्राप्त की है। आत्मतत्व का गम्भीर ज्ञान भारतवर्ष के दर्शन शास्त्र, वेदों में है उसकी प्राप्ति ब्रह्मचर्य और तप से ही हुई थी। मनुस्मृति और योग शास्त्र भी आत्मदर्शन के लिये इन्द्रिय और मन के निग्रह को ही एकमात्र साधन बताते हैं। कठिन ब्रह्मचर्य से भीष्म पितामह ने वज्र देह और दिव्य वाणी प्राप्त की। लक्ष्मण, हनुमान जी आदि के चरित्र भी व्यभिचार से सुरक्षित रहने के कारण ही इतने महत्व को पहुँचे। दिव्य दयानन्द सरस्वती जी महाराज भी ब्रह्मचर्य के कारण ही वेद—पुनरुद्धारक और चतुर्वेद मन्त्र दृष्टा ऋषि बने।

व्यभिचार को आत्महनन कहना चाहिये। पाप! आत्मा को मलिन करता है और व्यभिचार सबसे बड़ा पाप है। भय, चिन्ता, क्रोध, मोह और नीच विचार व्यभिचार के साथ आते हैं। मस्तिष्क में पृथक–पृथक स्थान, भिन्न–भिन्न प्रकार के आनन्दों की अनुभूति ग्रहण करने के लिये विद्यमान हैं, इसमें विषयानन्द जहाँ ग्रहण होता है, वह स्थान सबसे पीछे और सबसे निकृष्ट है।

प्राचीन दण्ड विधान शास्त्र में व्यभिचारी को डाकू और हत्यारे के दण्ड से भी अधिक कठोर दण्ड देने का विधान है, डाकू और हत्यारे सुधर सकते हैं, सुधरने की आशा भी की जा सकती है और सुधरते देखा भी गया है, परन्तु व्यभिचारी सुधर नहीं पाते वह किसी योग्य रहते ही नहीं और सदा अन्त में समय से पूर्व ही दुःख दायी मृत्यु पाते हैं। भीरुता, अपवित्रता और नास्तिकता व्यभिचार के अवश्यम्भावी परिणाम हैं, जिनका प्रभाव आत्मा पर अवश्य होता है। आत्मबल मनुष्य का निजी बल है, शेष समस्त बल पशु बल हैं, यही कारण है कि आज मनुष्य समाज, आचार–विचार और व्यवहार में पशु के समान और योग्यता में उससे भी हीन हो गया है।

१५ वें लूई के समय का कुत्सित फ्रान्स इतिहास जिन्होंने पढ़ा है, वह जानते हैं जो निरन्तर ५० वर्षों तक थर्रा देने वाली भीषण लाल क्रान्ति की लपटों में फ्रांस सुलगता रहा, जिसका मूल कारण था व्यभिचार जो चरम सीमा को पहुँच गया था। इतिहासकार लिखता है–

उस समय घूस और व्यभिचार की पराकाष्ठा हो गई थी। यदि यह कहें कि फ्रांस देश से पतिव्रत एवं पत्निव्रत धर्म का देश निकाला हो गया था, तो कुछ अत्युक्ति न होगी। १५ वाँ लुई अत्यन्त स्त्री लंपट राजा था। बुढ़ापे में तो वह अपनी वेश्या के इतना वशीभूत हो गया था कि उसी के इशारे पर राज्य होता था। उमराव लोगों की विलासिनी स्त्रियाँ

पहले मध्यम वर्ग के युवा पुरूषों से सम्बन्ध रखतीं और फिर उनसे खटपट होती तो उन्हें जन्म भर की काल कोठरी या मृत्यु दण्ड दिलवा देती थीं।

स्पार्टा का प्रसिद्ध ऋषि लाइकरगस इस व्यभिचार के भयानक कुप्रभाव को अच्छी प्रकार समझ गया था। यह वह समय था, जब सारा स्पार्टा और यूनान एय्याशी में सराबोर था। उद्योग धन्धे कुछ न थे, झूठ, छल घूँस और व्यभिचार सर्वत्र था। इस पुरुष ने सामाजिक जीवन को उलटने के लिए सबसे अधिक बल व्यभिचार की प्रवृति रोकने में किया। इसने नियम बनाया कि विवाह कोई युवक युवती स्वतन्त्रतापूर्वक न करने पावेगा। वरन् सरकार इस बात का निर्णय करेगी और रूप, स्वास्थ्य, स्वभाव और बल में जो स्त्री पुरुष समान हों उन्हीं को परस्पर विवाह करने की आज्ञा दी जाती। उसका मन था कि विवाह करना व्यक्तिगत सम्बन्ध नहीं है, सामाजिक सम्बन्ध है, और सन्तान माता—पिता की सम्पत्ति नहीं, राष्ट्र की सम्पत्ति है। उसने यह भी नियम बनाया था कि कोई विवाहित स्त्री पुरुष स्वच्छन्दतापूर्वक एकत्र होकर नहीं सो सकते थे। उसने ऐसा प्रबन्ध किया था कि सब पुरुष एकत्र होकर बाहरी स्थान में सोवें और स्त्रियाँ भीतरी भाग में। केवल ऋतु—काल में एकत्र हों। विधवा स्त्रियों के लिये नियम था कि वे चाहें तो वैध रीति से दूसरे विदुर पुरुष के वीर्य दान की आज्ञा प्राप्त कर सकती हैं। इन सब व्यवस्थाओं का यह प्रभाव हुआ कि स्पार्टा में बड़े—बड़े विशालकाय मनुष्य पैदा हुए और स्पार्टा के तीन—तीन सौ योद्धा सैनिकों ने दस—दस हजार शत्रु सैना पर विजय प्राप्त की।

एक बार स्पार्टा के सैनिक से एक विदेशी ने पूछा—तुम्हारे स्पार्टा में व्यभिचार का क्या दण्ड दिया जाता है? उसने उत्तर दिया—मित्र! हमारे देश में व्यभिचार होते ही नहीं। विदेशी ने पूछा—फिर भी यदि कोई व्यभिचार कर बैठे? सैनिक ने कहा—तब उसका वह बैल छीन लिया जाता है, जिसका सिर इस पहाड़ी पर और पूंछ उस पहाड़ी पर

हो। आगन्तुक ने कहा—भला यह कैसे सम्भव हो सकता है? इतना बड़ा बैल तो हो ही नहीं सकता। सैनिक ने कहा—तब स्पार्टा में भी व्यभिचार नहीं हो सकता।

महाराजाधिराज अश्वपति ने आरुणी उद्दालक ऋषि के सामने स्पष्ट घोषणा की, मेरे राज्य में कोई चोर नहीं, न दूसरे का धन हरण करने की इच्छा रखने वाला है, न कोई कृपण है (कंजूस) जो सम्पत्ति के रहते हुए दान न करे, न कोई मद्य-पान करने वाला है, कोई भी ऐसा व्यक्ति नहीं जो अग्निहोत्र (यज्ञ) न करता हो, न कोई अविद्वान् है जो अपने-अपने कर्त्तव्य को न समझता हो, कोई पुरुष व्यभिचारी नहीं तो कोई स्त्री दुराचारिणी कैसे हो सकती है।

महाजनो येन गतः स पन्था।

शासक वर्ग आदि बड़े लोग जैसे आचरण अथवा मार्ग का अवलम्बन करते है, वह औरों के लिए अनुकरणीय बन जाता है।

यथा राजा तथा प्रजा

राजा अर्थात् शासक वर्ग का जैसा आचरण, व्यवहार, विचार और आदर्श होता है वैसा ही प्रजा का बन जाता है।

उपरोक्त दोनों युक्तियाँ सत्य हैं। स्पार्टा में जैसा राजा था वैसी ही प्रजा थी और जव राजा आचारवान् आया तो प्रजा भी आचारवान् बन गई। महाराजाधिराज अश्वपति जैसे आचारवान् थे प्रजा भी वैसी ही आचारवान् थी। हमारे देश में भी राजा, शासक वर्ग, सांसद, विधायक, मन्त्री, नेतागण आदि के जैसे व्यवहार, आचरण और कृत्य हैं वैसे ही हम प्रत्यक्ष रूप से प्रजा में भी व्याप्त देख रहे हैं। वह व्यक्ति महानतम होते हैं जो दूसरों की व्यतीत घटनाओं के परिणाम को देख के सावधान होकर अपने मार्ग में परिवर्तन कर लेते हैं। वह सामान्य व्यक्ति होते हैं जो दूसरों की घटनाओं को देखकर सचेत नहीं होते परन्तु यदि वही घटना अपने साथ हो जाये तो उससे चोट खाकर सतर्क हो जाते हैं। परन्तु वह व्यक्ति जो न औरों की घटनाओं से सचेत होते हैं और न आप-बीती

से सचेत होते हैं अर्थात् त्रुटि पर त्रुटि करते ही रहते हैं वह व्यक्ति निकृष्ट कहे जाते हैं। इसी कारण इतिहास वेत्ता पूर्व की समस्त घटनाओं का बार–बार दिग्दर्शन करा देते हैं, जिसे राष्ट्र, राज्य, वंश और व्यक्ति देख पढ़कर सचेत होते रहें और राष्ट्र, राज्य, वंश और अपने आपको पद–दलित और पदाक्रान्त होने से बचा सकें।

उतो हि वां पूर्व्या आविविद्र ऋतांवरी रोदसी सत्यवाचः।
नरश्चिद्वां समिथे शूरसातौ ववन्दिरे पृथिवि वेविदानाः।।

ऋग्वेद ३।५४।४

वे ही लोग राज्य करने के योग्य हैं कि जो सत्य मानते, सत्य आचरण करने सत्य वाणी बोलने और इन्द्रियों के जीतने वाले विद्वान् जन होवें और वे ही रानी योग्य स्त्रियाँ हैं कि जो उक्त प्रकार के पति के सदृश होवें।

दिवाकर सम संसार से समस्त अविद्या अन्धकार को दूर हटाकर सत्य ज्ञान का प्रकाश करने वाले दिव्य दयानन्द सरस्वती जी महाराज ने अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश में नारी जाति की शिक्षा पर बहुत बल दिया। शिक्षा का उद्देश्य है कि निर्माण कर्त्री नारी जाति अपने उत्तरदायित्व को समझ कर सुयोग्य, सुशिक्षित, सदाचारी, सत्यवादी सन्तान को जन्म देकर महान गौरव को प्राप्त करना।

आशा है पाठकगण दोषयुक्त रात्रियों में स्थापित गर्भ से उत्पन्न सन्तान के कुपरिणाम और उत्तम रात्रियों में स्थापित गर्भ से उत्पन्न सन्तान के गौरव को भली प्रकार समझ लिया होगा। उत्तम विचारों को जानकर अपने व्यवहार में लाना और दूसरों को भी प्रेरित करना उत्तम पुरुषों के कार्य होते हैं।

परदारान्न गच्छेच्च मनसापि कथञ्चन।
किमु वाचास्थिबन्धोऽथि नास्ति तेषु व्यवायिनाम्।।

विष्णु पुराण ३।११।१२३

पर स्त्री से तो वाणी से क्या मन से भी प्रसंग न करे, क्योंकि उनसे मैथुन करने वालों को अस्थि बन्धन भी नहीं होता अर्थात् उन्हें अस्थि शून्य कीटादि होना पड़ता है।

इस श्लोक में परस्त्री से मन. वचन, और कर्म तीनों प्रकार से मैथुन करने का निषेध किया है, जो इस आदेश का उल्लंघन कर पर स्त्री में राग रखते हैं तो उन्हें अस्थिशून्य कीट गिंडार, सूँड़ी आदि योनियों में जाना पड़ता है। इसी प्रकार पर पुरुष में राग रखने वाली स्त्री को भी यही दण्ड भुगतना पड़ेगा। इस कारण 'परस्त्री' और 'परपुरुष' में राग एवं मैथुन की कामना के घोर पाप कर्म का मन, वचन और कर्म अर्थात् तीनों प्रकार का निषेध किया है।

शास्त्रकारों के अनुसार मैथुन आठ प्रकार के प्रभेदों से जाना जाता है। (१) मन से—कामना द्वारा, (२) नेत्रों से—स्वरूप देखकर (३) वाणी से—प्रलाप द्वारा (४) कानों से—रूपादि गुणों की प्रशंसा सुनकर (५) त्वचा से—स्पर्श अथवा आलिंगन द्वारा (६) नासिका से—गन्ध द्वारा (७) करों से—बलात् हरण द्वारा (८) उपस्थ द्वारा। इन आठ प्रकार के प्रभेदों को विष्णु पुराण में तीन भागों में विभक्त कर मन, वचन और कर्म पर इंगित किया है।

माता—पिता बनाकर घर में प्रवेश करता है, युवा कन्या को देखकर कामी कुत्ते की तरह जीभ लपलपाता है अर्थात् पुत्र बनकर घर में प्रवेश करता है और दामाद बनकर घर से बाहर आना चाहता है? दूसरा माता—पिता और गुरु मानकर सब कुछ सीख कर अपनी आय के सब साधनों से सम्पन्न होकर, उस आश्रयदाता का तिरस्कार ही नहीं उसके अधपतन की भी कामना करता है? कैसे घृणित विचार हैं। यह दोष गर्भाधान समय के कुविचारों की प्रति छाया होती है। इससे भी सावधान रहना चाहिए। गर्भाधान समय उत्तम और शुद्ध—पवित्र विचारों का होना अति आवश्यक है।

विलासतापूर्ण पाशविकता की ओर तेजी से दोड़ लगाने वाले विल्वमंगल की गाल पर वेश्या की फटकार रूपी करारी चपत लगने से जीवन बदल गया। पाशविकता के त्याग का संकल्प कर जंगल की ओर निकल पड़ा। प्यास लगी, ग्राम के कूप पर पहुँचा, एक युवती जल भर रही थी, उसी से पानी माँगा। युवती ने पानी पिला दिया। विल्वमंगल के मन में सुन्दरता को देखकर पाप उमड़ने

लगा और वह युवती के पीछे—पीछे घर पर चला गया। युवती ने कहा—"बाबा क्या भोजन चाहिए?" युवती के निष्पाप वचनों को सुनकर विल्वमंगल काँप उठा, अपने को धिक्कारने लगा और सोचने लगा मेरे अन्दर यह पापवृत्ति नेत्रों के कारण जागी है, मुझे इन नेत्रों को ही नष्ट कर देना चाहिए, उसने युवती से कहा—मुझे दो कीलें दे दो, युवती चर्खे के दो तकले लेकर आई और बाबा को दे दिएं, विल्वमंगल ने दोनों तकले अपने दोनों नेत्रों में भौंक लिए। युवती ने चिल्लाकर कहा—आपने यह क्या किया? विल्वमंगल ने कराहते हुए कहा देवी! इन नेत्रों के ही कारण तुमको देखकर पापवृत्ति जागी, इस लिए मैंने नेत्र ही समाप्त कर लिए। यही पुरुष कवि सूरदास के नाम से प्रसिद्ध हुए।

प्रात:काल के समय ऋषि दयानन्द नदी के किनारे—किनारे चले जा रहे थे, मार्ग में पाँच वर्षीय निर्वस्त्र कन्या दीखी, ऋषि ने उसे करबद्ध नमन किया, देवयोग से वहीं पर एक शिवाला भी था, उसी समय पुजारी ने पास आकर कहा—दयानन्द! मूर्ति में शक्ति थी तभी तो तुम्हारा यहाँ मस्तक झुक गया? चतुर्वेद मन्त्र द्रष्टा ऋषि दयानन्द ने कहा—बन्धु! मैंने उस जगत जननी मातेश्वरी को नमन किया है, देखो वह जा रही है, तुम्हारी पाषाण प्रतिमा मुझे क्या आकर्षित कर सकती है।

विल्वमंगल पर आत्मिक बल नहीं था और वासना रूपी रंगीन चश्मे को उतार फैंकने में भी असमर्थ था इस कारण उसने अपने नेत्र नष्ट कर लिए, ऋषि दयानन्द का अपनी सभी इन्द्रियों पर पूर्ण अधिकार था और सभी इन्द्रियाँ उनके वश में थीं।।

वर—यात्रा के समय सार्वजनिक मार्गों पर नन्दोई के साथ नृत्य करते हुए अपना हाथ नन्दोई के गले में और नन्दोई का हाथ अपने गले में डालकर प्रसन्नता पूर्वक गर्वानुभूति में मग्न हो जाना क्या उचित है? क्या इसे पर—पुरुष स्पर्श अर्थात् आलिंगन नहीं कहा जा सकता? जो मैथुन की ही कोटि में आता है? आप स्वयं विचारें कि यह

कार्य उचित है या अनुचित। आपका यही कथन होगा किसी को भी अप्रसन्न मत करो। तो क्या आप यही कहना चाहते हैं, कि दामाद, नन्दोई, बहनोई आदि को प्रसन्न करने के लिए अपने अस्तित्व को भी खो बैठो? नहीं ऐसा नहीं: यह परम्परा हमारी संस्कृति की नहीं हमारी संस्कृति बड़े ही ऊँचे स्वर से कह रही है—

महे चन त्वाद्रिवा: परा शुल्कय दीयते।
न सहस्राय नायुताय वज्रिवो न शताम शतामघ।।

ऋग्वेद ८।१।५

हे अन्धकार का नाश करने हारे, ज्ञान से सम्पन्न! हे वज्र शक्ति को धारण करने हारे आत्मन्! बड़े भारी मूल्य के बदले भी तुझको नहीं दिया जा सकता अर्थात् तेरा त्याग नहीं किया जा सकता। हे सैकड़ों ज्ञान कर्मों से सम्पन्न! न सौ के बदले, न हजार के बदले न लाख के बदले में ही तुझे दिया जा सकता है। अर्थात् लौकिक प्रशंसा के बदले में अपने धर्म—कर्म और अस्तित्व का त्याग न करना चाहिए।

श्रेयान्स्वधर्मो विगुण: परधर्मात्स्वनुष्ठितात्।
स्वधर्मे निधनं श्रेय: परधर्मो भयावह:।। गीता ३।३५

दूसरे सुलभ धर्म की अपेक्षा, दोषयुक्त प्रतीत होने पर भी अपने धर्म का आचरण कल्याणकारी होता है। अपने धर्म में मरना भी कल्याणकारी है। दूसरे के धर्म का पालन यदि सुखपूर्वक होता है तो भी वह भय देने वाला है। किसी भी समय लोभ से, काम से, भय से या जीवन रक्षा के लिए भी स्वधर्म अर्थात् सद्चरित्रता का त्याग नहीं करना चाहिए।

हमारी संस्कृति कहती है! पुरुष को एक पत्निव्रत धर्म का और स्त्री को एक पतिव्रत धर्म का पालन करना चाहिए।

एक छोटे से भवन में एक ओर वृद्धा और दूसरी ओर एक दम्पति निवास करते हैं। आज प्रात: ही वृद्धा ने सामने रहने वाली स्त्री से कहा—बेटा अपने नित्य कर्म से शीघ्र ही निबट जा, राजा भोज

के दर्शन करने चलेंगे। आज नगर में उनकी शोभायात्रा निकल रही है। स्त्री ने कहा—''माता जी! मैं राजा के दर्शन करने नहीं जाऊँगी।'' वृद्धा—''क्यों?'' स्त्री—हमारे धर्म शास्त्र में कहा है कि स्त्री को परपुरुष के दर्शन करना निषिद्ध है। वृद्धा—क्या तून आज तक अपने पति के अलावा अन्य किसी पुरुष का दर्शन नहीं किया? स्त्री—''नहीं!'' वृद्धा—क्या तूने अपने पिता और भाई का भी दर्शन नहीं किया?'' स्त्री—क्यों नहीं! परन्तु वे पर—पुरुष तो नहीं? वृद्धा—तू ठीक कहती है। पिता तो केवल तेरा ही पिता था। परन्तु राजा सबका पिता समान होता है, तो वह परपुरुष कैसे कहा जा सकेगा। इसलिए राजा का दर्शन करना कोई दोषपूर्ण कार्य नहीं।

इस घटना को आप पूर्व काल की कहकर ओझल कर सकते हैं, तो हम आपके सामने इसी काल की घटना प्रस्तुत करते हैं।

बुद्धदेव विद्यालंकार के विवाह के पश्चात् एक कन्या को जन्म देकर गृहस्वामिनी स्वर्ग सिधार गयीं।। इस वियोग की पीड़ा में बुद्धदेव सारे दिन चुपचाप अपने कमरे में ही पड़े रहते किसी से बोलते चालते भी नहीं थे। कुछ ही दिन पश्चात् इस शोक समाचार को सुनकर मुरादाबाद निवासी मौलाना सत्यदेव उनके घर पर गये। माता ने सत्यदेव को देखकर कहा—सत्यदेव! देख यह दिन भर ऐसे ही चुपचाप पड़ा रहता है, इसे कुछ समझा। सत्यदेव—बुद्धदेव से मिले और कहा, क्यों इतने चिन्तित हो शीघ्र ही तुम्हारे दूसरे विवाह की तैयारी कराये देते हैं। दूसरे विवाह की बात सुनकर बुद्धदेव में एकदम करन्ट दौड़ गया और सर ऊपर उठाकर बोले सत्यदेव! गुरुदेव दयानन्द ने एक पत्नी—वृति का ही आदेश दिया है। मैं दूसरा विवाह कदापि नहीं करुँगा। सत्यदेव—फिर क्यों इतने चिन्तित हो? बुद्धदेव—जीवन साथी के बिछुड़ जाने पर वेदना तो होती ही है, कुछ दिनों में सब कुछ ठीक हो जायगा। यही बुद्धदेव विद्यालंकार आगे चलकर स्वामी समर्पणानन्द के नाम से प्रसिद्ध हुये।

चन्द्रमुखी १५, १६ वर्ष की आयु में ही विधवा हो गयीं। दूसरे विवाह की बात उड़ती हुई कानों में पड़ी। सोचने लगीं, क्या ऐसा होगा? नहीं! कदापि नहीं। सत्यवान सावित्री की बचपन में ही पढ़ी घटना याद आने लगी, सावित्री ने पिता आदि सबके समझाने पर भी सत्यवान के वरण के निश्चय को नहीं त्यागा और कहा—स्त्री जीवन में पति का वरण केवल एक बार और एक ही पति का करती है, मेरा पति सत्यवान जीवित रहे या न रहे, परन्तु मैं अन्य किसी का वरण नहीं करूंगी। सावित्री ने तो सत्यवान का वरण करने का निश्चय ही किया था।

सावित्री के इस दृढ़ निश्चय ने चन्द्रमुखी को झकझोर दिया, जब सावित्री सत्यवान का केवल वरण करने के निश्चय पर अडिग रह सकती है तो क्या मैं विवाह के पश्चात् विधवा हो जाने के कारण एक पतिव्रत धर्म के पालन पर अडिग नहीं रह सकती? मैं भी अपने निश्चय पर अडिग रहूँगी, मुझे अपने निश्चय से विचलित कर मेरा दूसरा विवाह नहीं रचाया जा सकता। चन्द्रमुखी आज तक अपने एक पतिव्रत धर्म के पालन के दृढ़ निश्चयानुसार सात्विक जीवन यापन कर रही हैं। अब वह स्वर्ग सिधार गई।

एक भारतीय दम्पति यूरोप घूमने गए, एक यूरोपियन मित्र के आमन्त्रण पर उनके घर भोजन पर गये। मित्र की पत्नी ने भारतीय दम्पति की पत्नी से कहा—आपके साथ यह कौन हैं? भारतीय महिला—यह मेरे पति हैं। यूरोपियन महिला—कौन से नम्बन के पति हैं? इस बात को सुनकर भारतीय महिला ने बड़े ही आश्चर्य के साथ कहा—आपका नम्बर से क्या अभिप्राय है? यूरोपियन महिला ने मधुर वचनों में कहा—यही पहले पति हैं, दूसरे हैं, तीसरे हैं कौन से नम्बर के हैं। भारतीय महिला ने बड़े स्वाभिमान के साथ कहा—हमारे देश की संस्कृति में यह परम्परा नहीं, हमारा तो केवल एक ही पति होता है, जिससे मरणोपरान्त भी सम्बन्ध विच्छेद नहीं होता। इस उत्तर को सुनकर यूरोपियन महिला ने बड़े ही आश्चर्य के साथ उसकी ओर

देखा और कहा—आप बहुत ही भाग्यशाली हैं जो ऐसी पवित्र परम्परा वाले देश की वासिनी हैं।

इसी सन्दर्भ में हम आपके सामने मर्यादा पुरुषोत्तम श्री राम के आदर्श चरित्र को अवलोकनार्थ प्रस्तुत करते हैं।

पुष्पं दृष्ट्वा फलं दृष्ट्वा, योषित यौवनम्।
त्रीणि रत्नानि दृष्ट्वेव, कस्य नो चंचलते मनः।।

लक्ष्मण ने श्री राम से प्रश्न किया—सुन्दर पुष्प को देखकर, सुन्दर फल को देखकर और सुन्दर युवती को देखकर किस का मन नहीं मचलता।

उत्तर —

पिता यस्य शुचिभूँतो, माता यस्य पतिव्रता।
द्वाभ्यां यः सूनु रूत्वन्न, स्तस्य नो चंचलते मनः।।

जिस पिता ने, परस्त्री गमन के भावों को स्वप्न में भी नहीं आने दिया और जिस माता ने स्वप्न में, परपुरुष की ओर दृष्टिपात नहीं किया, ऐसे माता—पिता से जो पुत्र उत्पन्न होगा। उसका मन इनको देखकर कभी विचलित नहीं होगा।

का सुष्टुति शवसः सूनुमिन्द्रमर्वाचीनं राधस आ ववर्त्तत्।
ददिर्हि वीरो गृणते वसूनि स गोपतिर्निष्षिधां नो जनासः।।

ऋग्वेद ४।२४।१

हे मनुष्यों! जो पूर्ण ब्रह्मचर्य को किये हुए का पुत्र और वह स्वयं भी पूर्ण ब्रह्मचर्य और विद्या से युक्त और प्रशंसित आचरण करने और सुख देने वाला होवे वह ही आपका और हम लोगों का राजा हो।

अवर्त्या शुनआन्त्राणि पेचे न देवेषु विविदे मर्डितारम्।
अपश्यं जायाममहीयमानामधां मे श्येनो मध्वा जभार।।

ऋग्वेद ४।१८।१३

हे राजन्! जो पुरुष और स्त्रियाँ व्यभिचार करें उनको तीव्र दण्ड देकर नाश करो।

आचरण करना अब आपके हाथ में है। देखना यह है कि आप अब चित्र की ही पूजा में लगे रहना चाहते हैं या चरित्र की पूजा अपनाकर अपना निर्माण करना चाहते हैं।

एक दृष्टि में

१. ४,७,११,१३ रात्रियाँ दोष युक्त कलंक को प्रदान करने वाली सन्तान को देती हैं, इसमें कभी भूल कर भी गर्भ स्थापित न करें।
२. परदेश में अथवा दूसरे के गृह पर कभी भी गर्भाधान न करें।
३. ५,६,८,९,१०,१२ रात्रियाँ दोष रहित हैं, इनमें गर्भ स्थापित करना उचित है।
४. १४,१५,१६ रात्रियों में स्थापित गर्भ से संसार को चकित करने वाली दिव्य विभूतियाँ जन्म लेती हैं।
५. यदि अधिक कामुक अथवा विशयी हो तो वर्जित तिथियों में कण्डोम का प्रयोग करो। अधिक विशयी होना अच्छा नहीं। इसका दुष्परिणाम ५० वर्ष की आयु के पश्चात् अवश्य ही भुगतना पड़ेगा। शरीर अधिक जरजरित हो जाता है।
६. किसी भी प्रकार के नशे की अवस्था में गर्भ स्थित हो जाने पर, उससे उत्पन्न सन्तान, किसी भी प्रकार की मानसिक विकृति का किसी भी अवस्था अथवा आयु में शिकार बन सकती है, इसे कोई रोक नहीं सकता। पौरुष शक्ति वर्धक औषधियों में नशा ही प्रधान होता है।
७. गर्भावस्था में मैथुन और अश्लील साहित्य का अवलोकन करने से गर्भित सन्तान अधिक कामुक और विशयी हो जाती है। अच्छा साहित्य पढ़ने से अच्छी सन्तान होती है।

८. महिलाओं के मासिक धर्म के समय पर प्रयोग आने वाला 'पैड' उत्तम है स्वच्छ हैं। यह अवस्था एक अत्यन्त सम्वेदनशील, कोमल, प्रकृया की है इसमें आर्तव का प्रवाह होता है। ऐसी अवस्था में खेलना, कूदना, दौड़ना, साइकिल चलाना आदि कार्य अत्यन्त हानिप्रद हैं। ऐसा करने से आर्तव का स्राव तीव्र हो जाता है, जो भविष्य में गर्भपात और बन्ध्या दोष का कारण बना सकता है।

विनम्र निवेदन

यदि आप उत्तम गुण युक्त सन्तानों को जन्म देने में बिल्कुल ही असमर्थ हैं तो कम से कम इतना तो अवश्य ही करें कि दोष पूर्ण कलंकों से युक्त सन्तानों को जन्म देने वाली चौथी, सातवीं, ग्यारहवीं और तेरहवीं रात्रियों अथवा दूसरे के गृह पर भूलकर भी गर्भ स्थापित न करें। औरों को भी ऐसी भूल न करने का अवश्य ही परामर्श दें।

वेदं शरणम् आगच्छामि
सत्यं शरणम् आगच्छामि
यज्ञं शरणम् आगच्छामि

इति

आगामी उपहार

१— वातायन
२— वेदामृत भगवत भक्त कथा
३— मृत्यु के पश्चात्

स्वस्थ्य

एवम्

सुसंस्कृत

बच्चे

राष्ट्र की निधि हैं

और वही

राष्ट्र के निर्माता हैं।

जिनके मुख मण्डल पर आभा,
शरीर में बल, मन में प्रचण्ड इच्छाशक्ति
और अपार उत्साह,
बुद्धि में वेद का पाणित्य,
जीवन में स्वावलम्बन और हृदय में ऋषि
गाथायें अंकित हों, जिन्हें देखकर
महापुरुषों की स्मृतियाँ संकृत हो उठें।

वीरेन्द्र गुप्तः

वेद दर्शन

हिन्दी टीका सहित अनुपम ग्रन्थ। मूल्य १००/—

इच्छानुसार सन्तान

ब्रह्मचारी पुत्र--पुत्री, धर्मात्मा, जितेन्द्रिय सन्तान प्राप्त करना। मूल्य ६०/—

पुत्र प्राप्ति का साधन

पुत्र प्राप्ति के लिये मार्ग दर्शन मूल्य ८/—

गर्भावस्था की उपासना

गर्भित बालक के संस्कार बनाना। मूल्य ९/—

दस नियम

आर्य समाज के नियमों की सरल भाषा में विस्तार से व्याख्या। मूल्य ७/—

दैनिक पंच महायज्ञ

नित्य कर्म विधि। मूल्य १०/—

HOW TO BEGET A SON मूल्य २५/—

गायत्री साधन मूल्य ५/—

आनुषक कहानियाँ मूल्य १५/—

पूर्ण ग्रन्थ

अपने विषय में यह परिपूर्ण ग्रन्थ है। आप इसके द्वारा सन्तान सम्बन्धी सभी प्रकार के प्रश्नों का समाधान कर सकते हैं। सन्तान का न चाहना (निरोध) सन्तान का रंग, रूप, आकृति, स्वभाव, योग्यता और पुत्र, कन्या कैसी और किसकी इच्छा है। यह सब कुछ आपके हाथ में है।

ग्रन्थ का नाम – इच्छानुसार सन्तान,

लेखक – वीरेन्द्र गुप्त:

विशेष – यदि आपके सन्तान नहीं है या बार–बार गर्भ गिर जाता है या सन्तान जन्म लेकर समाप्त हो जाती है। इन सबके समाधान हेतु आप परामर्श ले सकते हैं।

सूर्य गुणी

पुत्रदाता औषधि

इस प्रभावयुक्त दिव्यौषधि का गर्भावस्था के ८१ से ८५ दिन के मध्य में सेवन कराने से पुत्र ही प्राप्त होता है।

वीरेन्द्र नाथ अश्विनी कुमार

प्रकाशन मन्दिर, मण्डी चौक, मुरादाबाद